भारतीय लोकतन्त्र : जाति और राजनीति की अन्तःक्रिया

डॉ. सुरेन्द्र यादव

एक लम्बी पराधीनता और शोषण पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था के पराभव के पश्चात् भारतीय शासन संचालन के लिए लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया है । यह कदम भारतीय परम्परावादी समाज में आधुनिक मूल्यों की स्थापना का क्रान्तिकारी प्रयास था। यद्यपि भारतीय समाज एवं संस्कृति में लोकतान्त्रिक मूल्य पहले से ही गहरई तक बैठे हुए थे परन्तु फिर भी भारत के संविधान निर्माताओं को इस बात पर संशय था कि क्या भारत जैसे राष्ट्र राज्य में लोकतान्त्रिक व्यवस्था सफल हो सकेगी। इस संशय का सबसे बड़ा कारण लोकतन्त्र के पाश्चात्य स्वरुप को अपनाये जाने को लेकर था । वस्तुतः पश्चात्य प्रकृति का लोकतन्त्र एक निश्चित प्रक्रिया और विकास का परिणाम था । पाश्चात्य राष्ट्र राज्यों में लोकतन्त्र का आगमन त्रिस्तरीय विकास की परिणति थी उन राष्ट्र राज्यों में सर्वप्रथम समाजों में व्यापत जटिलता एवं बन्धनों के विरुध धार्मिक अथवा सामाजिक लोकतन्त्र का आगमन हुआ तत्पश्चात् आर्थिक क्षेत्र में वणिकवादी आन्दोलन द्वारा आर्थिक लोकतन्त्र लाया गया और अन्ततः जब सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में लोकतान्त्रिक मूल्यों ने अपनी जड़ें गहराई तक जमा ली तब इन मूल्यों का राजनीतिक क्षेत्र में क्रमबद्ध रुप से प्रवेक्षण करवाया गया जो राजनीतिक लोकतन्त्र अथवा आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था के रुप में हमारे सामने आया। परन्तु इस प्रकार का क्रमबद्ध लोकतान्त्र भारतीय परिवेश में नहीं आ सका जिसके संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि ''सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र के बिना राजनीतिक लोकतन्त्र अधूरा है तथा इसकी सफलता सदैव संदिग्ध रहेगी।'' परन्तु भारत में 65 सालों के सफल लोकतान्त्रिक कार्यकरण ने इस आशंका को झुठला दिया है।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक राष्ट्र राज्य में आधुनिक प्रकृति की लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सफलता का सर्वाधिक प्रमुख कारण यहॉ की जटिल जाति व्यवस्था का पाया जाना रहा है। पिछले 65 सालों में जाति एवं भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में हुई अन्तःक्रिया ने लोकतन्त्र को और अधिक सशक्त करने का कार्य किया है। भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतन्त्र के प्रवेक्षण के समय जाति व्यवस्था को लेकर अनेक प्रश्न खडे किये गये थे वे सारे प्रश्न आज धुलीभूत होते नजर आते हैं । एम. एन. श्रीवास्तव , डी. आर. गाडगिल तथा हैरिसन जैसे राजनीतिक एवं समाजशास्त्रिय विचारकों ने जातिवाद को भारतीय लोकतन्त्र के लिए सबसे बड़ा खतरा माना है। डी. आर. गाडगिल जाति व्यवस्था को देश के एकीकरण के मार्ग में बाधक मानते हैं उनके अनुसार '' क्षैत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक यह बात है की वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सुत्र में बॉधने में बाधक सिद्ध हुई है।'' हैरिसन के अनुसार ''जातियों ने समाज में आर्थिक एवं राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता एवं विद्वेष को प्रेरित किया है।'' वहीं एम. एन. श्रीवास्तव के अनुसार जातियों की प्रभावशीलता के कारण भारतीय लोकतन्त्र एवं लोकतान्त्रिक संस्थाएं अपने मूल कार्य से भटक रही हैं । ऐसा प्रतित होता है कि उपरोक्त विचरकों के ऐसे विचार भारतीय समाज एवं उसमें जातियों के महत्त्व से परिचित न होने की वजह से दिये गये हैं। जातियॉ भारतीय राष्ट्र राज्य का वह आधार स्तम्भ है जो इसे सनातन युग से अटूट बनाये हुए है।

भारतीय परिवेश में जातियों की राजनीति से अन्तःक्रिया को सही रुप में मूल्यॉकित करने के लिए स्वतन्त्रता के समय की भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों तथा भारतीय जनमनस के अर्न्ततम में हो रही उथल–पुथल को सही रुप में समझना अपरिहार्य है। वस्तुतः 14–15 अगस्त 1947 की मध्य रात्री को भारतीय जनमानस राजनीतिक दासता से तो मुक्त हो गया परन्तु उससे भी भीषण रुप से वह सामाजिक एवं आर्थिक बन्धनों से जकडा हुआ था । हमे अब राजनीतिक लोकतन्त्र के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र की ओर द्रुड़ कदम बढाने थे। यह पाश्चात्य प्रतिरुप का विपरीत क्रम था। इस मार्ग में सबसे बडी बधा अज्ञानता, अशिक्षा, बहुसांस्कृतिक स्थिति और भाषायी–क्षैत्रिय विखण्डन की स्थिति थी। लोकतन्त्र का विशद प्रकाश भारतीय आभामण्डल को तब तक प्रकाशित करने में असक्षम था जब तक जनमानस में लोकतान्त्रिक संस्कृति,

राजनीतिक संस्कृति एवं राजनीतिकरण की प्रक्रिया का विकास न किया जाता। भारतीय समाज में व्याप्त अज्ञानता एवं अशिक्षा ने राजनीतिकरण एवं सांस्कृतिकरण की इस प्रक्रिया को ओर जटिल बना दिया। ऐसी विकट स्थिति में नवजात लोकतन्त्र को बचाये रखने एवं इसे सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए सामाजिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना नितान्त अपरिहार्य था। सामाजिक संस्थाओं में जाति व्यवस्था ने समाज में राजनीतिक शिक्षण में सर्वाधिक महत्तवपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। भीषण गरीबी एवं अज्ञानता की स्थिति जहॉ नागरिकों को शासन व्यवस्था , लोकतान्त्रिक मूल्यों एवं अपने अधिकारों का तनिक भी ज्ञान नहीं था वहॉ जातियों ने एक माध्यम का कार्य किया जिसके द्वारा जनसामान्य चुनाव प्रक्रिया, सामान्य नागरिक अधिकारों के विषय में अधिकाधिक ज्ञान का अर्जन कर सका।

भारत में जाति एवं राजनीति की अन्तःक्रिया तीन प्रतिरुपों में उभर कर सामने आयी है–

प्रथम–जातियों का लौकिक रुप –

रजनी कोठारी ने जातियों के धार्मिक पक्ष की अपेक्षा लौकिक, राजनीतिक पक्ष का गहन अनुसंधान किया है। जातियॉ धार्मिक मुल्यों एवं मान्यताओं के प्रति समर्पित होने के साथ–साथ आपसी प्रतिद्वन्द्विता एवं गुटबाजी में लीन रहती हैं जो सत्ता एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति की लालसा से प्रेरित होती हैं। ऐसी प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति में जातिगत नेता अथवा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोग सत्ता एवं शक्ति प्राप्त करने के लिए अपनी जातियों को राजनीतिक गतिशीलता प्रदान करने के लिए अथक प्रयास करते हैं। ये लोग चुनाव प्रक्रिया, कल्याणकारी योजनाओं , अधिकारों को जनसामान्य विशेषतः अपनी जाति के लोगों तक पहुॅचाने का कार्य करते हैं ताकि ये अधिकाधिक मत एवं जनसमर्थन ले सत्ता में भागीदार बन सके ।

दूसरा–जाति व्यवस्था का एकिकरणवादी रुप –

भारत में जातियों का उदभव व्यवसायिक वर्गीकरण के रुप में हुआ था। एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाले लोग एक जाति एवं व्यवसाय का हिस्सा बन गये साथ ही एक जाति के लोग नगरों एवं ग्रामों में अपनी पृथ्क बस्ति में निवास करने लगे जिसके परिणम स्वरुप लोगों में आर्थिक एवं सामाजिक एकता एवं संगठन का जन्म हुआ जिसने लोकतन्त्र की स्थपना के पश्चात राजनीतिक एकता को भी जन्म दिया। नयी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जातिगत निष्ठाएं राजनीतिक एवं लोकतान्त्रिक निष्ठाओं में परिवर्तित हो गयी हैं। वस्तुतः विविध संस्कृति वाले राष्ट्र राज्य में सत्ता प्राप्ति केवल एक जाति की निष्ठा से ही सम्भव नहीं है फलतः अनेक जातियों के मध्य परस्पर गठबन्धनों का जन्म हुआ जैसे बिहार में मुसलमान एवं यादव , उत्तर प्रदेश में दलित –ब्रह्ममण –मुस्लिम आदि इन गठबन्धनों ने आपस में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

तृतीय–जाति व्यवस्था का चैतन्य रूप –

भारतीय समाज में जातियों का स्पष्ठ पदानुक्रम है परन्तु कुछ जातियां अपने को अन्य से उच्च प्रमाणित करने हेतु विभिन्न तरीकों का सहारा लेती है । सम्प्रती भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक जातियों ने अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए राजनीति में अधिकाधिक भागिदारी को माध्यम बनाया है । ऐसी स्थिती में जातियां अपने को संगठित कर लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में भाग लेती है एवं सत्ता एंव शक्ति प्राप्त कर जाति पदानुक्रम में अपने को उच्च स्थान दिलाने का प्रयास करती है । जिसमे लोगों का अधिकाधिक राजनीतिक शिक्षण सम्भव हो पाता है ।

वस्तुतः जिसे आज जातिवाद कहा जा रहा है वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ भी नहीं हैं । भारत में जातीय आधार पर संगठित होने वाले समुहों से देश के आधुनिकीकरण और संसदीय जनतन्त्र की कार्यशीलता में सहायता मिली है । राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए विभिन्न जातियों ने संगठित होकर प्रतियोगी राजनीति में भाग लेना शुरू किया और इनमें स्वाभाविक रूप से उनमें राजनीति जागरूकता , अपने अधिकारो का ज्ञान , अपने हित सुरक्षित और विकसित करने की भावना और राजनीतिक सत्ता में भागीदार बनने की आकाक्षाएं प्रबल रूप से उत्पन्न हुई हैं जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए अपरिहार्य है । भारतीय लोकतान्त्रिक इतिहास ने यह साबित कर दिया है कि यह एक सफल लोकतन्त्र है और इसे सफलता के सौपान तक पहुॅचाने में जातियों ने एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया है । परन्तु फिर भी जहॉ कहीं विचलन पैदा हुआ है वह अधिकाधिक विकास व राजनीतिक व्यवस्था में अधिक भागिदारी की मांग को लेकर हुआ है व्यवस्था के विरूद्ध नहीं ।

व्याख्याता,
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तिय प्रबन्ध विभाग, एस. एस. जैन सुबोध पी. जी. महाविद्यालय

संदर्भिका

1. Caste in Indian Politics, Rajni Kothari, 1995
2. Caste and Democratic Politics in India, Ghanshyam Shah , 2004
3. Caste and politics in Indian education, S. Omprakash, 1986
4. Religion, Caste, and Politics in India,Christophe Jaffrelot ,2010